International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(6): 75-77

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(6): 75-77
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 12-09-2020
Accepted: 19-10-2020

MkO uru dekjh
नवरतन चौक, पूर्णिया सिटी, पूर्णिया, बिहार, भारत

Corresponding Author:
MkO uru dekjh
नवरतन चौक, पूर्णिया सिटी, पूर्णिया, बिहार, भारत

श्रीमद्भगवद्गीता एक अनुशीलन

MkO uru dekjh

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2020.v6.i6b.1241

प्रस्तावना

''महाभारत'' भारतीय मनीषियों में महान महर्षि वेदव्यास के द्वारा रचित महाकाव्य है। यह ग्रन्थ एक अनुपम एवं अत्युत्कृष्ठ महाकाव्य है। इसके संबंध में कहा जाता है कि ''यन्नेहास्ति तन्नेहास्ति''। अर्थात जो यहाँ नहीं है वह विश्व में कहीं नहीं है। अर्थात जो इस ग्रन्थ में वर्णित नहीं है वह विश्व में कहीं नहीं है।

परिचय :–

''श्रीमद्भगवद्गीता'' महाभारत के भीष्म पर्व में वर्णित है। कौरव और पाण्डवों के बीच युद्ध का निर्णय होता है। युद्ध के मैदान कुरूक्षेत्र में कौरवों की सेना और पाण्डवों की सेना जब आमने सामने हो गयी तो पाण्डव अर्जुन अपने सगे सम्बन्धियों, बुजुर्गों की विशाल सेना को देखकर हतप्रभ और मोहग्रस्त हो गए। उन्होंने कह दिया कि वे युद्ध नहीं करेंगे। तब उनके रथ के सारथि के रूप में विराजमान नरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने उन्हें दुनिया का सबसे महान नीतिउपदेश ''श्रीमद्भगवद्गीता'' का ज्ञान प्रदान किया तब अर्जुन की अज्ञानता दूर हुई। इस दृष्टि से ''गीता'' महाभारत का एक अंश कहा जा सकता है, किन्तु कालान्तर में इसे अत्यन्त प्रतिष्ठित स्वतंत्र ग्रन्थ में सर्वत्र स्वीकार किया गया और इसे पूजा गया।''

विवेचना :–

यह प्रत्येक मानव के जीवन में घटित होता है कि एक समय वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। उसकी बुद्धि कुछ भी निर्णय लेने में असमर्थ हो जाती है। ऐसी ही स्थिति कुरूश्रेत्र के मैदान में अर्जुन की हो गई। अर्जुन अपने सगे सम्बन्धियों को देखकर मोहग्रस्त हो जाते हैं। वे युद्ध नहीं करने का निर्णय लेते हैं। वे श्रीकृष्ण से कहते हैं कि अपनों को मारकर राज्य भोगने से क्या लाभ। राज्य तो अपने सगे सम्बन्धियों को खुश रखने के लिए किया जाता है। अपने दादा, ताउओं, गुरू, मामाओं, भाइयों को मारकर राज्य भोगना बेकार है। अर्जुन ने अपने रथ के सारथि श्रीकृष्ण से कहा :–

कथं भीष्ममहं सङ्रव्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ।।

श्लोकार्थ :– हे मधुसूदन मैं रणभूमि में किस प्रकार वाणों से भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य के विरूद्ध लड़ूँगा। एक दादा हैं तो दूसरे गुरू। एक ने पालन–पोषण किया तो दूसरे ने जीवन का व्यावहारिक एवं वास्तविक ज्ञान दिया। वे दोनों ही पूजनीय हैं। हे अरिसूदन इन पूजनीय जनों से मैं कैसे युद्ध करूँ और इन्हें मारकर राज्य ग्रहण करूँ।

अर्जुन कहते हैं कि ऐसे युद्ध करने से तो संसार में भीख माँगकर खाना मैं श्रेयस्कर समझता हूँ। अतः मैं युद्ध नहीं करूँगा।

अर्जुन का मोह दूर करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा –

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरन्तप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ।।
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारूतः ।।

जैसे मनुष्य के देह में बाल पन जवानी और वृद्धावस्था आती है। उसी तरह इस शरीर के नष्ट होने पर अन्य शरीर की प्राप्ति होती है उस विषय में धीर पुरष मोहित नहीं होते। हे अर्जुन ! तुम्हें इस विषय में शोक नहीं करना चाहिए। बाल पन से जवानी आने को कोई रोक नहीं सकता उसी तरह क्रमशः वृद्धावस्था की प्राप्ति भी होती है उसे ठहराया नहीं जा सकता।

इस शरीर को नष्ट किया जा सकता है किन्तु आत्मा तो अनश्वर हैं। यह अजर–अमर है। इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसे जल नहीं गला सकता और नही हवा सुखा सकती है। यह आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य, अशोष्य, नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहनेवाला और सनातन है।

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन :–

जातस्य हि ध्रुवोमृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्माद्परिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।।

ऐसा कहा जाता है कि जन्में हुए व्यक्ति की मृत्यु निश्चित है और मरे हुए का जन्म निश्चित है इसलिए इस बिना उपायवाले विषय में तू शोक करने को योग्य नहीं है।

सुखदुखेसमेकृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ।।

सुख–दुख, जय–पराजय, लाभ–हानि सबको एक समान समझकर युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। युद्ध करने से तुम्हें पाप की प्राप्ति नहीं होगी। उन्होंने अर्जुन को संसार की अनित्यता के सम्बन्ध में कई उदाहरण देकर उन्हें युद्ध के लिए तैयार किया। कर्म पर मनुष्य का अधिकार है उसके फल पर नहीं क्योंकि जैसा कर्म होगा उसका परिणाम उसी प्रकार होगा। कर्म नहीं करने में व्यक्ति का विश्वास नहीं होना चाहिए। कर्म की प्रधानता को स्थापित करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं –

कर्मव्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते सड्गेस्त्वकर्मणि ।।

इस अनित्य संसार में कर्म ही महत्वपूर्ण है फल तो कर्म का परिणाम है जिस पर हमारा कोई अधिकार नहीं हैं।

जिस प्रकार चित्रण अनेक रंगों के द्वारा प्रस्फुटित और विकसित होता है वैसे ही नीति एवं विधि पूर्वक सम्पन्न किए हुए संस्कारों के द्वारा यह भौतिक शरीर तथा इसके सूक्ष्म सृष्टि एवं जीव के लिए अधिकाधिक उपयोगी बन जाते है; यही नीति ज्ञान तथा धर्म की सफलता और सार्थकता है। अध्यात्म का समस्त कलेवर इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए विनिर्मित हुआ है जिससे मनुष्य आन्तरिक दृष्टि से भावनात्मक स्तर पर अपनी उत्कृष्टता सुरक्षित रखने एवं बढ़ा सकने में समर्थ बना रहे और बाह्य दृष्टि से क्रिया स्तर पर अपनी आदर्शवादिताभरे, संयमित, मर्यादित तथा लोक मंगल के लिए गतिविधियाँ अपनाए रखने की तत्परता बरते। पूजा, उपासना, सत्संग, कथा, वार्ता, तीर्थ व्रत आदि के द्वारा मनुष्य अपनी आन्तरिक उत्कृष्टता का संवर्द्धन करता है। मानवीय व्यक्तित्व का निर्माण मनुष्य की कलाकारिता, सूझबूझ, एकाग्रता और ऐसे पराक्रम का फल है जो संसार के अन्य उपार्जनों की तुलना में कहीं अधिक महत्वपूर्ण एवं अधिक प्रयत्न साध्य है। उसमें संकल्पशक्ति, साहस और दूरदर्शित। का परिचय देना पड़ता है।

श्रीकृष्ण ने ज्ञान प्राप्ति के लिए अत्यावश्यक क्या है यह भी बताया है : –

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।।

ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरू के प्रतिश्रद्धा होना अत्यावश्यक है। ज्ञान पिपासु को श्रद्धा के साथ–साथ अपनी इन्द्रियों को वश में रखना भी परमावश्यक है तभी ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञान मिलने के बाद परमानन्द की प्राप्ति होती है मन शान्त हो जाता है तथा अन्त में समाधि का सुख मिल जाता है। अर्थात ज्ञान मानवजीवन को एक आधार प्रदान करता है एक पहचान और ईश्वर का साक्षात्कार भी कराता है।

वर्तमान समय में ''श्रीमद्भगवद्गीता'' तो एक मार्गदर्शक की भूमिका निभाता है। यह एक उच्च कोटि का पथ निर्माता तथा पथ प्रदर्शक दोनों ही भूमिका में खड़ा उतरता है। मनुष्य भौतिकता की आँधी में सुध–बुध खो चुका है। सुध–बुध खोया हुआ व्यक्ति अनिश्चय एवं अनिर्णय की स्थिति में वह कुछ भी कर बैठता है जो कथमपि नहीं करना चाहिए। ऐसा कार्य आत्मघात या पलायनवाद कहलाता है, प्रगतिशील ज्ञानचिन्तन से मुख मोड़कर अपनी दिशा पतन की ओर मोड़ लेना समझा जाता है। आत्मविश्वास की कमी, कल्पित भय तथा भविष्य के प्रति निराशा ये तीनों ही स्थितियाँ मनुष्य के संकल्प बल की क्षीण करती है और समाज में दुर्बल नागरिकों को जन्म देती हैं। ऐसी दुर्बलता से उबरने के लिए उपनिषद्, गीता, विदुरनीति, नीतिशतक, चाणक्यनीति इत्यादि महान ग्रन्थों के नीति वचनों को दैनिक जीवन के आचरण में अपनाना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ।।

श्रीमद्भगवद्गीता स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा दिया गया उपदेश है इसलिए यह सभी शास्त्रों और पुराणों से बढ़कर है। यह इतना गूढ़ एवं गम्भीर है कि आजीवन इसका निरन्तर अभ्यास करते रहने पर मानव जीवन सफल और प्रसिद्ध हो जाता है। इसके अनुशीलन से नित नूतन भाव उत्पन्न होते ही रहते हैं जिसे अपनाकर मानवजीवन धन्य हो जाता है। इसमें भगवान के गुण, प्रभाव, स्वरूप, तत्व, रहस्य, उपासना, कर्म एवं ज्ञान का जो वर्णन किया गया है वह अनुपमेय है। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेम्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्त्तव्यकर्मों को मुझमें समर्पित कर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

निष्कर्ष

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के अनुशीलन से यह निष्कर्ष निकलता है कि इसमें ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग की त्रिवेणी बही है। इसके अवगाहन से मानवजीवन सफल और सार्थक बन सकता है। ज्ञानयोग, ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि जितने भी साधन बतलाए गए हैं उनमें से कोई भी साधन अपनी श्रद्धा, रूचि और योग्यता के अनुसार करने से मनुष्य का शीघ्र कल्याण हो सकता है। इनके द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलकर मनुष्य अपना परम लक्ष्य हासिल कर सकता है। अपने परिवार, समाज, गाँव और देश को उत्कर्ष के उन्नत शिखर पर पहुँचा सकता है।

सन्दर्भ सूची ग्रन्थ

1. ऋक्सूक्त संग्रह– व्यारव्याकार डा0 हरिदत्त शास्त्री एवं डा0 कृष्ण कुमार प्रकाशक– साहित्य भंडार
2. श्रीमद्भगवद्गीता– गीता प्रेस गोरखपुर मोतीला जालान सं0–2031 संस्करण
3. संस्कृत हिन्दी शब्दकोश– वामन शिवराम आप्टे– मोतीलालबनारसी दास प्रकाशन दिल्ली, पटना–4

4. मनुस्मृति– चौखम्भा संस्कृत सीरिज प्रकाशन, वाराणसी–1979ई0
5. संस्कृत महाभारत प्रथम खण्ड– महर्षि वेदव्यास गीता प्रेस गोरखपुर सं0–2045
6. संस्कृतमहाभारत तृतीय खण्ड– महर्षि वेदव्यास गीता प्रेस गोरखपुर सं0 2065 में प्रकाशित
7. व्यारव्यान वल्लरी श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम् अनुसंधान, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली
8. याज्ञवल्क्यस्मृति–निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई 1981 में प्रकाशित।